संगति

भाग – 3

अकाल पुरुष ने इस सृष्टि अथवा **'विराट नाटक'** की अपने 'कवाओ' अथवा **'हुकुम'** द्वारा रचना की, जिसे वह स्वयं ही देखकर **'चाव'** में प्रसन्न हो रहा है ।

हुकमी हुकमु चलाए राहु ।।
नानक विगसै वेपरवाहु ।। (पृ २)
आपे वेखि विगसदा पिआरा करि चोज वेखै प्रभु आपै ।। (पृ ६०५)
जिन उपाई रगि रवाई बैठा वेखै वखि इकेला ।। (पृ ७२३)

बच्चे — पतंगे, गुड्डे -गुड़ियाँ आदि बना कर चाव से खेलते तथा प्रसन्न होते हैं, तथा फिर स्वयं ही तोड़ देते हैं । यह बच्चों का **'खेल'** – **ईश्वरीय 'विराट नाटक' की रचना का ही संकेत है ।**

ढाहे ढाहि उसारे आपे हुकमि सवारणहारो ।। (पृ ५७९)
भंनण घड़ण समरथु है ओपति सभ परलै ।। (पृ ११०२)

अन्तर केवल यह है कि बच्चों के बनाये हुए गुड्डे -गुड़ियाँ तो **'निर्जीव'** हैं — परन्तु अकाल पुरुष ने अपने बनाये हुए जीवों में **अपनी 'ज्योति' प्रवेश करके,** उनको अपनी **'जीवन -रौं', अथवा 'नाम' के 'सूत्र' में पिरो दिया ।**

सगल समग्री तुमरै सूत्रि धारी ।। (पृ २६८)
आपन सूति सभु जगतु परोइ ।। (पृ २९२)
आपे सूतु आपे बहु मणीआ करि सकती जगतु परोइ ।। (पृ ६०४)

इस 'जीवन -रौं' अथवा **'नाम'** की **'प्रीत -डोरी'** में समस्त जीव पिरोये हुए हैं तथा इसी 'प्रीत -डोरी' के माध्यम से जीवों का एक दूसरे के साथ तथा अकाल -पुरुष के साथ —

संबंध
मेल मिलाप
संग
संगति

बनी हुई है ।

इसी 'नाम -डोरी' अथवा आत्मिक 'सूत्र' द्वारा ही 'जीवों' का आपस में, तथा अपने कर्त्ता अकाल पुरुष से परस्पर —

प्यार का आर्कषण
प्रीत की डोरी
प्रीत की आकांक्षा

द्वारा, आत्मिक —

सांझेदारी
वाणिज्य -व्यापार
आदान -प्रदान
आत्मिक लाभ

बना हुआ है ।

ईश्वरीय 'जीवन -रौं' अथवा 'नाम' से जीव का आत्मिक —

सम्बंध
मेल -मिलाप
सांझ
संगति
आदान -प्रदान

जीव की —

चेतना
ध्यान
याद
सिमरन
विश्वास
श्रद्धा -भाव
प्रेम -स्वैपना

द्वारा —

उत्पन्न होता
फलता
प्रफुल्लित तथा
दृढ़

होता है। दूसरे शब्दों में अकाल पुरुष तथा **'नाम'** के **'अस्तित्व'** के विषय में, हमारे मन में —

अहसास
विश्वास
श्रद्धा -भावना
प्रेम -स्वैपना
जागृति

हमारी 'चेतना' अथवा 'ध्यान' द्वारा ही हो सकती है।

चौरासी लाख योनियों में भी **'जीवन -रौं'** अथवा **'नाम' 'रवि रहिआ परिपूर्ण'** है, परन्तु उनकी **चेतना** (consciousness) अथवा अहसास करने की शक्ति अति **स्थूल तथा तुच्छ स्तर की होने के कारण** उन्हें अन्तर -आत्मा में प्रवृत्त 'जीवन रौं', 'शबद' अथवा 'नाम' का **अहसास या ज्ञान नहीं होता।**

चौरासी लाख योनियों की तुलना में, मनुष्य की **'चेतना'** अथवा **अहसास शक्ति अति सूक्ष्म तथा तीक्ष्ण है,** जिस कारण मनुष्य की **'चेतना' ही कोमल दैवीय भावनाओं को महसूस कर सकती है** तथा इन का आत्मिक रस तथा 'प्रेम स्वैपना' का आनन्द ले सकती है।

जब हमारे अन्दर अनुभव शक्ति या चेतना स्थूल तथा तुच्छ हो, तब हम **'पशु' समान हो जाते हैं तथा** पशुओं की भाँति अपने अन्तःकरण तथा तुच्छ ख्यालों से **प्रभावित होकर अचेत ही तुच्छ कर्म करते रहते हैं।**

जो न सुनहि जसु परमानंदा ॥
पसु पंखी त्रिगद जोनि ते मंदा ॥ (पृ १८८)

करतूति पसू की मानस जाति ॥
लोक पचारा करै दिनु राति ॥ (पृ २६७)

मनमुखि अंधुले गुरमति न भाई ॥
पसू भए अभिमानु न जाई ॥ (पृ ११९०)

कई बार अपनी तुच्छ वाशनाओं के प्रभाव अधीन हम पशुओं से भी तुच्छ कर्म करते हैं तथा परिणाम भोगते हैं।

जिउ कूकरु हरकाइआ धावै दह दिस जाइ ॥
लोभी जंतु न जाणई भखु अभखु सभ खाइ ॥ (पृ ५०)

धिगु खाणा धिगु पैन्हणा जिन्हा दूजै भाइ पिआरु ।।
बिसटा के कीड़े बिसटा राते मरि जंमहि होहि खुआरु ।। (पृ. १३४७)

इस प्रकार हम अकाल पुरुष को **'भूल' जाते हैं** तथा हमारी चेतना में से **'नाम'** की जीवन-रौं का अहसास या विश्वास **उड़ जाता है** या **नाम मात्र ही** रह जाता है जिस कारण जीव का आत्मिक मंडल से **'चेतन सम्बन्ध' टूट जाता है** तथा 'नाम' की जीवन-रौं से हमारा —

सम्बंध
संगति
आदान-प्रदान

नहीं हो सकता तथा हम अपनी **दिव्य विरासत से वंचित हो जाते हैं ।**

ईश्वरीय मंडल की **'प्रीत-डोरी' से टूट कर 'जीव' आत्मिक 'माला' के शेष मोतियों अथवा गुरमुख प्यारों की 'चेतना' से भी बिछुड़ जाता है** तथा उनके दिव्य दामनिक 'व्यक्तित्व' से अन्तर-आत्मा में —

मेल जोल
सांझ
संगति
वाणिज्य व्यापार
आदान-प्रदान

भी नहीं हो सकता ।

इस प्रकार ईश्वर को **'भूल'** कर, आत्मिक **'स्रोत'** अकाल पुरुष अथवा **'नाम'** तथा 'संगत' से **टूट कर**, मायिकी मंडल में अपने आप को **पृथक अस्तित्व समझता** है, जिस कारण उसे **अकेलापन** महसूस होता है ।

साध जना ते बाहरी से रहनि इकेलड़ीआह ।। (पृ. १३५)
धन एकलड़ी जीउ बिनु नाह पिआरे ।। (पृ. २४४)
नानक गुरू न चेतनी मनि आपणै सुचेत ।।
छुटे तिल बूआड़ जिउ सुंञे अंदरि खेत ।। (पृ. ४६३)
आप कमाणै विछुड़ी दोसु न काहू देण ।। (पृ. १३६)
विधण खूही मुंध इकेली ।।
ना को साथी ना को बेली ।। (पृ. ७९४)

उदाहरण के रूप में जब तक कोई **'मोती'** माला में पिरोया हुआ हो, तब तक वह माला के **'परिवार' का सदस्य होता है** तथा सारी माला की सुन्दरता, विशेषता तथा महत्व में प्रत्येक मोती का योगदान या भागीदारी होती है, परन्तु **'माला' से निकल कर,** अकेले मोती का कोई महत्व या **कदर -कीमत नहीं रहती,** अपितु वह मोती स्वयं रचित अकेलेपन में **कुढ़ता तथा ख्वार होता है ।**

इसी प्रकार जब जीव 'नाम' की प्रीत -डोरी में पिरोया होता है, तब वह आत्मिक मंडल के समस्त गुणों तथा प्रशंसा का **'भागीदार'** होता है तथा **'नाम'** में पिरोये हुए सत्संगियों, संत मंडल अथवा **'नानक परिवार' का मैम्बर होता है** तथा दैवीय संगत द्वारा आत्मिक 'आदान -प्रदान' करता तथा **लाभ उठाता है ।**

तनु मनु मउलिआ राम सिउ संगि साध सहेलड़ीआह ।। (पृ. १३५)

सुखि बैसहु संत सजन परवारु ।।
हरि धनु खटिओ जा का नाहि सुमारु ।। (पृ. १८५)

संतन सिउ मेरी लेवा देवी संतन सिउ बिउहारा ।।
संतन सिउ हम लाहा खाटिआ हरि भगत भरे भंडारा ।। (पृ. ६१४)

नानक हरि जसु हरि गुण लाहा
सतसंगति सचु फलु पाइआ ।। (पृ. १०४०)

हीरे हीरा बेधिआ रतन माल सतिसंगति चंगी । (वा. भा. गु. ६/९)

गुर सिख रतन पदारथा साध संगति मिलि माल परोई ।
(वा.भा.गु. १५/१६)

खतरनाक अपराधियों को **काल कोठरी** (solitary cell) में बंद किया जाता है, जिस की **'तन्हाई'** अति दुखदायी तथा असह्य होती है ।

इसी प्रकार जब 'जीव', 'नाम' से टूट कर मायिकी मंडल में प्रवृत्त होता है, तब उसको 'अहम्' का दीर्घ रोग अथवा 'द्वैत भाव' का 'भ्रम' चिपक जाता है तथा वह स्वयं 'मैं-मेरी' की 'काल -कोठरी' में कैद रहता है तथा आजीवन चिंता -फिकर, डर -भय के **'अग्नि -शोक सागर' में जलता -भुनता रहता है ।**

जो जीअ हरि ते विछुड़े से सुखि न वसनि भैण ।। (पृ. १३६)

बाझु गुरू फिरै बिललादी दूजै भाइ खुआए ।। (पृ. ५१३)

जिस नो करता विसरै तिसहि विछोड़ा सोगु जीउ ।। (पृ. ७६०)

मोह -माया में गलतान हुए जीव को उच्च -पवित्र **'दैवीय संगत' नहीं भाती।** यदि देखा -देखी या औपचारिकतावश 'संगत में जाता भी है, तो **श्रद्धा -भाव न होने के कारण, वह संगत में से कोई लाभ नहीं उठा सकता ।**

जिन के चित कठोर हहि से बहहि न सतिगुर पासि ।।
ओथै सचु वरतदा कूड़िआरा चित उदासि ।।
ओइ वलु छलु करि झति कढदे फिरि जाइ बहहि कूड़िआरा पासि ।।
विचि सचे कूड़ु न गडई मन वेखहु को निरजासि ।।
कूड़िआर कूड़िआरी जाइ रले
सचिआर सिरव बैठे सतिगुर पासि ।। (पृ. ३१४)

सचा साहु सचे वणजारे ओथै कूड़े ना टिकनि ।।
ओना सचु न भावई दुख ही माहि पचनि ।। (पृ. ७५६)

कबीर पापी भगति न भावई हरि पूजा न सुहाइ ।।
मारवी चंदनु परहरै जह बिगंध तह जाइ ।। (पृ. १३६८)

साध संगति गुर सबदु सुणि गुरमुखि पंथ न चाल चलदे ।
कपट सनेही फलु न लहदे । (वा. भा. गु. १७/३)

जब अकाल पुरुष की 'याद', जीव की चेतना (consciousness) **में से निकल जाये या ढीली पड़ जाये अथवा विश्वास कम हो जाये, तब अहम् की 'मैं -मेरी' अथवा 'द्वैत भाव' का आचरण हो जाता है ।**

'द्वैत -भाव' अथवा **अहम्वादी चेतना** (ego-consciousness) द्वारा —

मैं-मेरी
स्वार्थ
ईर्ष्या-द्वेष
वैर -विरोध
काम
क्रोध
लोभ
मोह
अंहकार

आदि, समस्त वाशनाएँ सहज ही जीव को आ चिपकती हैं, जिनके **'अभ्यास'** से हमारे मन पर **'भ्रम की काई'** अथवा 'मायिकी मैल' चढ़ती जाती है, तथा हम आत्मिक

मंडल से और भी दूर अथवा **अश्रद्धक होते जाते हैं ।**

प्रत्येक जीव के मायिकी विचार, समझ, निश्चय अलग -अलग होने के कारण, हमारे जीवन के 'अनुभव' भी विलक्षण होते हैं तथा हमारे अन्तःकरण की रंगत भी भिन्न -भिन्न होती है ।

इसी कारण **'अहम् ग्रसित' तथा 'नाम' से टूटे हुए 'जीवों' की** —

सोच
समझ
ख्याल
निश्चय
श्रद्धा
इच्छाओं
आशाओं
स्वाद
कर्म
धर्म
क्रिया

अथवा जीवन के समस्त पक्षों में 'अन्तर' या फर्क होता है । मायिकी जीवन के इस 'अन्तर' के कारण जीवों **में परस्पर** —

मत -भेद
वाद विवाद
झगड़े
लड़ाईयाँ
खून -खराबा
अत्याचार

होने अनिवार्य हैं, जिस का प्रत्यक्ष प्रमाण हमारे —

दिलों में
घरों में
परिवारों में
संबंधियों में

विद्यक स्थानों में
धार्मिक स्थानों में
धर्मों में
सरकारी विभागों में
सम्प्रदायों में
देशों में
विश्व में

प्रकट -रूप में प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है ।

दूसरे शब्दों में, जब तक हमारे **मन का झुकाव आत्म -परायण होता है,** तब हम नाम की 'अनहद धुन' में मस्त होकर अकाल पुरुष की **'प्रीत -डोरी' में पिरोये होते** हैं, तथा 'हुकुम' अथवा ईश्वरीय 'हुकुम' में **सुर हुए 'संगी -साथियों',** साधुजन, संतों, गुरमुख प्यारों, महा पुरुषों की **'संगत' में अमृत भोजन** अथवा **'नाम' की** —

संझ
लेन -देन
वाणिज्य -व्यापार
सौदा

करते हैं तथा **'लाभ' उठाकर आत्मिक आनन्द उठाते है ।**

इसके ठीक विपरीत — दिव्य 'प्रीत -डोरी' में से **निकल कर** अथवा अकाल पुरुष को **भूल कर**, हम सच्ची -पवित्र आत्मिक **'साध संगत'** अथवा **'सत् संगत' से 'वंचित' रहते हैं** तथा **'मन -मुख' बन कर** मायिकी मंडल के 'विकट शोक सागर' अथवा 'भउजल बिखम असगाहु' में पलच कर मरते, जन्म लेते तथा नर्क भोगते हैं ।

साधसंगति सिउ संगु न कीआ बहु जोनी दुखु पावै ।। (पृ ७७)

जिन सतिगुर संगति संगु न पाइआ
से भागहीण पापी जमि खाइआ ।। (पृ ४९४)

मोह रोग सोग तनु बाधिओ बहु जोनी भरमाईऐ ।।
टिकनु न पावै बिनु सतसंगति किसु आगै जाइ रूआईऐ ।। (पृ ५३२)

साधसंगति बिनु भमि मुई करती करम अनेक ।।
कोमल बंधन बाधीआ नानक करमहि लेख ।। (पृ ९२८)

मनमुखि आवै मनमुखि जावै ।। मनमुखि फिरि फिरि चोटा खावै ।।
जितने नरक से मनमुखि भोगै गुरमुखि लेपु न मासा हे ।। (पृ १०७३)

जीव की अन्तर -आत्मा में ईश्वरीय 'ज्योति' होने के कारण, जीव की 'चेतना' अथवा अन्तःकरण की **गहराईयों** में 'प्रीत -प्रेम -प्यार' का 'आकर्षण' अनजाने ही **गुप्त रूप में प्रवृत्त है ।** इसी कारण मायिकी मंडल में भी जीवों का परस्पर मानसिक आकर्षण तथा सामाजिक मेल -जोल बना रहता है, जिसे **'मोह'** कहा जाता है । यह **'मोह'** सृष्टि की सभी योनियों में प्रवृत्त है । इसी कारण पशु -पक्षी **समूह बनाकर** रहते हैं तथा इन्सान **परिवारों,** गाँवों तथा शहरों में इकट्ठे होकर **समाज के रूप में रहते हैं ।**

कुरबाणु कीता तिसै विटहु जिनि मोहु मीठा लाइआ ।। (पृ ९१८)
माइआ मोहि सभु जगतु उपाइआ ।। (पृ १०५२)
इसु जग महि मोहु है पासारा ।। (पृ १०६७)

आत्मिक मंडल के 'प्रीत -प्रेम -प्यार' के 'आकर्षण' अथवा 'प्रीत -डोरी' में अनन्त प्रभु का 'भाविआ भाउ अपार' वाला स्वरूप प्रवृत्त होने के कारण, यह सुखदायी, आनन्दमयी तथा विस्मादमयी है ।

इस ईश्वरीय प्यार की 'प्रिम -खेल' को खेलने वाले गुरमुख प्यारों को 'गुरुमुख', 'साधू', 'भक्त', 'हरिजन' आदि नामों से **सम्मानित** किया गया है तथा इन महापुरुषों के संग —

'संगत' करने
'मेल जोल' करने
'सांझेदारी' करने
'आदान -प्रदान' करने
'वाणिज्य -व्यापार' करने

को ही **गुरबाणी में 'साध संगत' अथवा 'सत् संगत' कहा गया है ।**

आउ साजन संत मीत पिआरे ।।
मिलि गावह गुण अगम अपारे ।। (पृ १०४)
सतसंगति मिलीऐ हरि साधू मिलि संगति हरि गुण गाइ ।। (पृ ३६८)
संतह संगु संत संभारवनु हरि कीरतनि मनु जागै ।। (पृ ६७४)

राम मो कउ हरि जन मेलि मनि भावै ।।
अमिउ अमिउ हरि रसु है मीठा मिलि संत जना मुखि पावै ।। (पृ ८८१)

हरि जन सगल उधारे संग के ।।
भए पुनीत पवित्र मन जनम जनम के दुख हरे ।। (पृ १२०८)

इस के **ठीक विपरीत 'नाम' की 'प्रेम-स्वैपनाओं' से टूटे हुए अथवा अकाल पुरुष से 'विमुख'** हुए जीवों के एकत्र होने या मेल-जोल को 'साध संगत' अथवा 'सतसंगत' **नहीं कहा जा सकता,** क्योंकि इस **'समूह'** या 'मेल-जोल' में आत्मिक 'प्रेम-स्वैपना' की झलक अथवा 'नाम' की **'पारस कला' नहीं होती ।**

किसी गुरुमुख विद्वान ने ठीक लिखा है कि **दिव्य 'प्रेम-स्वैपना' से वंचित मनुष्यों के 'समूह'** को 'साध संगत' अथवा 'सत् संगत' कहना **अनुचित तथा भ्रान्ति है ।** ऐसे **'नाम' से वंचित** अथवा कोरे तथा **माया में रंगे** मनुष्यों के मेल को गुरबाणी में यूँ दर्शाया गया है —

सदा सहाई संत पेखहि सदा हजूरि ।।
नाम बिहूनड़िआ से मरन्हि विसूरि विसूरि ।। (पृ ३९७)

मनमुखा केरी दोसती माइआ का सनबंधु ।।.....
कूड़ा गंढु न चलई चिकड़ि पथर बंधु ।। (पृ ९५९)

कबीर मारी मरउ कुसंग की केले निकटि जु बेरि ।।
उह झूलै उह चीरीऐ साकत संगु न हेरि ।। (पृ १३६९)

उदाहरण के रूप में, **'मृतकों'** के समूह में से **दुर्गन्ध** ही फैलती है, जो जीवित व्यक्तियों के लिए दुखदायी एवं असह्य होती है ।

'नाम' अथवा ईश्वरीय 'प्रेम-स्वैपना' के बिना, जीव की चेतनता अति मलिन एवं तुच्छ हो जाती है, जिस कारण उनके मेल मिलाप एवं व्यवहार में से भी मायिकी दुर्गन्ध की **'भड़ास'** उत्पन्न होती है — जिसका उनके संगी-साथियों पर भी **'मृतकों की दुर्गन्ध'** की भाँति **बुरा तथा घातक प्रभाव पड़ता है ।** यहाँ तक कि उनके **'मोह-प्यार' में भी 'मैं-मेरी' का अंश होता है ।** इसी कारण मायिकी प्यार अथवा **'मोह'** को गुरबाणी में यूँ दर्शाया गया है —

जगत मै झूठी देखी प्रीति ।।
अपने ही सुख सिउ सभ लागे किआ दारा किआ मीत ।। रहाउ ।।
मेरउ मेरउ सभै कहत है हित सिउ बाधिओ चीत ।। (पृ ५३६)

माइआ मोहु सभु दुखु है खोटा इहु वापारा राम ।। (पृ ५७०)

माइआ मोहु सभु कूड़ु है कूड़ो होइ गइआ ।।
हउमै झगड़ा पाइओनु झगड़ै जगु मुइआ ।। (पृ ७९०)

जिनी नामु विसारिआ से होत देखे खेह ।।
पुत्र मित्र बिलास बनिता तूटते ए नेह ।। (पृ १००६)

गुरबाणी में अकाल पुरुष तथा ईश्वर को **भूले हुए एवं विमुख हुए जीवों को 'मृतक' ही कहा गया है** —

सतिगुरु जिनी न सेविओ सबदि न कीतो वीचारु ।।
अंतरि गिआनु न आइओ मिरतकु है संसारि ।। (पृ ८८)

सो जीविआ जिसु मनि वसिआ सोइ ।।
नानक अवरु न जीवै कोइ ।। (पृ १४२)

मिरतक कहीअहि नानका जिह प्रीति नही भगवंत ।। (पृ २५३)

हरि बिसरत सो मूआ ।। (पृ ४०७)

इससे स्पष्ट है कि **नाम** अथवा ईश्वरीय 'प्रेम स्वैपना' से टूटे हूए 'जीव' **आत्मिक रूप से 'मुर्दा' होते हैं** तथा इन मुर्दो के परस्पर मेल-मिलाप अथवा **'संग'** में से भी **'मुर्दपन की दुर्गन्ध'** निकलनी स्वभाविक है ।

समस्त विश्व में जो —

शक
जलन
घृणा
ईर्ष्या-द्वेष
वैर-विरोध
झगड़े
लड़ाईयाँ
बदले

की बहुलता तथा आचरण दिखायी देता है, यह सब **इन्सानी 'मुर्दपन' की दुर्गन्ध का प्रतिबिम्ब या प्रकटाव है ।**

ये **'विश्वास-हीन' नाम से टूटे हुए 'मुर्दा' जीव,** स्वयं मोह-माया के 'अग्नि-शोक-सागर' में जलते भुनते रहते हैं, तथा जिस के साथ भी ये **'संग'** या

'मेल' करते हैं — उसे भी आपनी मोह -माया की **आग की 'चिंगारी' लगा देते हैं।** इस प्रकार इनके **एकत्र होने से इस मायिकी** 'अग्नि -शोक -सागर' की लपटों में और बढ़ोत्तरी होती है ।

पूरे गुर का हुकमु न मंनै ओहु मनमुखु अगिआनु मुठा बिखु माइआ ।।
ओसु अंदरि कूडु कूड़ो करि बुझै अणहोदे झगड़े दयि ओस दै गलि पाइआ ।।
ओहु गल फरोसी करे बहुतेरी ओस दा बोलिआ किसै न भाइआ ।।
ओहु घरि घरि हढै जिउ रंन दोहागणि
ओस नालि मुहु जोड़े ओसु भी लछणु लाइआ ।। (पृ ३०३)

मनमुख माइआ मोहि विआपे दूजै भाइ मनूआ थिरु नाहि ।।
अनदिनु जलत रहहि दिनु राती हउमै खपहि खपाहि ।।
अंतरि लोभु महा गुबारा तिन कै निकटि न कोई जाहि ।। (पृ ६५२)

मनमुख बोले अंधुले तिसु महि अगनी का वासु ।। (पृ १४१५)

वास्तव में 'धार्मिक स्थान', धर्मशाला, डेरे, मठ, दरगाह तथा ठाठ आदि —

पवित्रता
प्रेम -स्नैपना
मानसिक शीतलता
आत्मिक जीवन सेध
हरि कीर्तन
भक्ति
नाम -अभ्यास

आदि, **दैवीय गुणों के 'केन्द्र' होने चाहिए ।**

परन्तु बहुत निराशा तथा दुख की बात है कि ऐसे पवित्र **आत्मिक केन्द्रों को भी,** नाम से टूटे हुए तथाकथित धार्मिक व्यक्तियों ने अपनी भीतरी मानसिक अग्नि लगा दी है तथा वहाँ भी —

ईर्ष्या -द्वेष
प्रतिस्पर्धा
लोभ
क्रोध
अहंकार
डर

सहम

अशान्ति

विमुखता

का बोल -बाला एवं व्यवहार हो रहा है । इस का प्रकटाव प्रत्यक्ष रूप से नित्यप्रति देखने तथा सुनने में आ रहा है ।

हम अपनी अज्ञानता तथा विमुखता में —

तुच्छ -रुचियाँ

तुच्छ विचार

पार्टी-बाजी

ईर्ष्या -द्वेष

वैर -विरोध

निजी स्वार्थ

'कुर्सी' की लालसा

चौधरी बनने की भूख

अहम् का प्रकटाव

करते हुए धर्म स्थानों को भी —

ईर्ष्या -द्वेष के अडड्े

अहम् का अखाड़ा

क्रोध का क्षेत्र

निज स्वार्थ का माध्यम

मायिकी लाभ

गप -शप का अखाड़ा

निंदा -चुगली का केन्द्र

गुटबन्दी का अडड्ा

तनाव का केन्द्र

बदला लेने का माध्यम

बना दिया है ।

दुखदायी बात तो यह है कि जिस 'श्री गुरू ग्रन्थ साहिब जी' को हम 'इष्ट' तथा 'गुरू मानते हैं — उन की **पावन उपस्थिति** में धर्म के नाम पर **गुरबाणी के आश्य के ठीक विपरीत** ईर्ष्या -द्वेष, वैर -विरोध, लोभ, स्वार्थ, क्रोध तथा

'अहम्' का खुल्लम -खुल्ला प्रकटाव करते रहते हैं तथा 'गुरु ग्रन्थ साहिब' का **निरादर करके अपने धर्म की ग्लानि का इश्तिहार स्वयं प्रस्तुत करते हैं ।**

इस प्रकार हम अपनी मानसिक ग्लानि या **'आग की चिंगारी' अपने साथ, धर्म स्थानों में ले जाते हैं** तथा एक दूसरे को यह **'चिंगारी'** लगाते जाते हैं । इस के परिणाम स्वरूप पवित्र धार्मिक स्थानों में भी —

लोभ -लहर
तूं-तूंमैं-मैं
अहम् की डींगें
गुटबन्दी
खींचतान
ताने
लड़ाई-झगड़े
खून खराबा
बदला लेना

आदि, घृणा योग्य, भयानक तथा दुखदायी कुकर्म होते रहते हैं ।

हमारी धार्मिक ग्लानि का भाई साहिब भाई गुरदास जी ने यूँ वर्णन किया है —

बाहरि की अगनि जयों बूझै जल सरिता कै
नाउ मै जौ आग लागै कैसे कै बुझाईऐ ।
बाहर सैं भाग ओट लीजीअत कोट गड़
गड़ मै जौ लूट लीजै कहो कत जाईऐ ।
चोरन कै त्रास जाए सरन नरिंद गहै
मारै महीपति जीउ कैसे कै बचाईऐ ।,
माया डर डरपत हार गुर द्वारे जावै
तहां जौ विआपै माया कहां ठहिराईऐ । (क.भा.गु ५४४)

खेद की बात है, कि यह धार्मिक ग्लानि का प्रकटाव, 'सत्संग' अथवा 'साध संगत' की **'आड़'** में किया जाता है । इस धार्मिक ग्लानि के प्रकटाव, को 'सत्संगत' अथवा 'साध संगत' का नाम देना, हमारी अज्ञानता की 'भूल' है ।

हम बाहरमुख धर्म के **दीर्घ** 'भ्रम-भुलाव' में — लापरवाह, बे-परवाह, अनजान, अज्ञानी, सन्तुष्ट होकर भले-भद्र बन कर —

पवित्र-पावन
ईश्वरीय 'रंग' वाली
आत्मिक 'रस' वाली
'चुप-प्रीत' वाली
प्रीत-डोरी वाली
प्रेमपूर्ण मनोभावों वाली
'प्रेम-स्वैपना' वाली
'रुन-झुन' वाली
'अनहद धुन' वाली
'आत्मिक जीवन' वाली
'जीवन्त'
'आत्मिक 'छुह' वाली
आत्मिक 'आकर्षण' वाली
'नाम' वाली

'सत संगत' अथवा 'साध संगत' के अन्तर-आत्मिक 'मार्ग' के 'प्रेम-खेल' से वंचित रहते हैं।

इतना ही बस नहीं, हमारे तथाकथित धर्म प्रचारक तथा धर्म के ठेकेदार भोले-भाले **होनहार जिज्ञासुओं** को बाहरमुख फोकट कर्म-काण्ड में ही उलझाकर रखते हैं।

मोनि भइओ करपाती रहिओ नगन फिरिओ बन माही ।।
तट तीरथ सभ धरती भ्रमिओ दुबिधा छुटकै नाही ।।
मन कामना तीरथ जाइ बसिओ सिरि करवत धराए ।।
मन की मैलु न उतरै इह बिधि जे लख जतन कराए ।। (पृ. ६४१-६४२)

हठु निग्रहु करि काइआ छीजै ।।
वरतु तपनु करि मनु नही भीजै ।। (पृ ९०५)

यह तो पूर्णतया प्रत्यक्ष 'कुसंगत' है, जिसे 'सत्संग' कहना, 'सत्संगत' अथवा 'साध संगत' शब्दों का निरादर है।

हमारे सम्पूर्ण जीवन अथवा व्यक्तित्व को — रंगने, ढालने, घड़ने, बदलने तथा बनाने का **एक -मात्र साधन या माध्यम 'संगत' ही है ।**

दूसरे शब्दों में **'संगत' ही हमारे 'जीवन' को** —

सुखदायी	या	दुखदायी
सफल	या	निष्फल
नेक	या	बुरा
परमार्थिक	या	मायिकी
आत्म परायण	या	माया परायण
शान्त	या	अशान्त
प्रेमपूर्ण	या	फेकट
उन्नति	या	अवनति
मुक्ति	या	बंधन
स्वर्ग	या	नर्क
चरण -शरण	या	यम के वश
नाम की शीतलता	या	मायिकी अग्नि
आत्म ज्ञान	या	भ्रम -भुलाव
प्रेम स्वैपना	या	ईर्ष्या की जलन
'तूं ही तूं'	या	मैं-मेरी
गुरमुख	या	मनमुख
आस्तिक	या	नास्तिक

आदि, में ढालने, बदलने तथा बनाने के सक्षम है ।

कबीर मनु पंखी भइओ उडि उडि दह दिस जाइ ।।
जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलु खाइ ।। (पृ १३६९)

काहू दिसा के पवन गवन कै बरखा ह्वै
काहू दिसा कौ पवन बादर बिलात है ।
काहू जल पान कीए रहत अरोग देही
काहू जल पान बिआपै बिथा बिललात है ।
काहू ग्रिह की अगनि पाक शाक सिधि करै
काहू ग्रिह की अगनि भवन जरात है ।
काहू की संगति मिलि जीवन मुकति होइ
काहू की संगति मिलि जमपुरि जात है । (क. भा. गु. ५४९)

(क्रमशः .....)